लड़ाई एक लड़की की

सुहास कुमार

तीस वर्षीय महिला मेधा पाटेकर ने आदिवासियों को जोड़कर सरकार के खिलाफ लड़ाई में जान की बाजी लगा दी है। उसकी लड़ाई 1985 से शुरू हुई थी। कुछ आदिवासियों के आधे-अधूरे संगठनों के प्रतिनिधियों को साथ लेकर वह महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के सरकारी अफसरों से मिलीं। सरकारी अफसर उन्हीं से गांवों के आंकड़े मांगते। इन लोगों ने काफी मेहनत करके आंकड़े जमा किए। नतीजा क्या हुआ? इनकी जानकारी बढ़ती गई, सरकार वहीं की वहीं रही।

शुरू में 200 समितियों ने इनके सत्याग्रह आंदोलन में साथ दिया। मेधा किसी राजनैतिक दल की सदस्या नहीं हैं। उन्होंने जनशक्ति को संचालित करके एक नई आशा का संचार करने वाला एक बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया है। मेधा की सबसे बड़ी जीत यह है कि किसान और आदिवासी मिलकर इस लड़ाई में शामिल हुए हैं। इसमें दलित वर्ग के लोग भी शामिल हैं।

शुरू से ही पूरा आंदोलन शांतिपूर्ण, गांधीवादी तरीकों से चलाया जा रहा है। मेधा ने उस क्षेत्र के 7 प्रतिनिधियों के साथ 7 जनवरी से 28 जनवरी '91 तक भूख हड़ताल की। इससे सरकार पर कोई खास असर नहीं हुआ। लेकिन आंदोलनकारियों की ताक़त बढ़ी है। मेधा के शब्दों में "21 दिनों के उपवास के बाद हम 21 गुना ज़्यादा ताक़त लेकर, संघर्ष के लिए तैयार होकर जा रहे हैं।"

30 जनवरी '91 की संकल्प सभा में कहा गया कि "राष्ट्रपिता गांधी की पुण्यतिथि पर गुजरात सरकार ने सभी गांधीवादी मूल्यों की हत्या की है। इसलिए अब हम सरकार के पास किसी मांग को लेकर नहीं जाएंगें। संविधान ने हमें जीने का अधिकार दिया है। हम अपने गांव में अपना राज कायम करेंगें। शिक्षक और डाक्टर के सिवा किसी सरकारी कर्मचारी को गांव में नहीं घुसने देंगे।"

आदिवासियों का कहना है, "हम इंसान हैं, आंकड़े नहीं।" संगठन बढ़ रहा है। आंदोलनकारियों ने घोषणा की है, "जंगल, ज़मीन और पानी पर सरकार का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए उससे जुड़ा कोई कानून हम नहीं मानेंगे।" उन्होंने सोच लिया है और बाबा आमटे ने कहा भी है, "हमारी तैयारी नर्मदा में डूब जाने की है। कोई नहीं हटेगा। बांध नहीं बनेगा।"

इस लड़ाई में जनता का पूरा एका और भरपूर सहयोग की ज़रूरत है। इस लड़ाई में जनता की मन, वचन, कर्म से एकता पूरे देश की जनता के भविष्य के निर्माण की दिशा तय करेगी। क्या सरकार की गलत बातें हम मुंह, आंखें बंद कर मान लें? या संगठित होकर उसके खिलाफ आवाज उठाएं? □